

वर्ष ७ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२१ • माघ/(फाल्गुन) पूर्णिमा [शक] • दि. २३-३-१९७८ • अंक ९/१०

## प्रवचन प्रवाह

१ (ङ)

सांस को देखते देखते हम अपने मन के स्वभाव को पलटने का काम भी कर रहे हैं। इसके रोग को दूर करनेका, इसके मैल को उतारने का काम भी कर रहे हैं। सांस को देखना, मन को एकाग्र करना मात्र ही नहीं है। सांस को देखता मन को निर्मल करना भी है, जो हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य है। जिस क्षण हम शुद्ध सांस का निरीक्षण कर रहे हैं। और मन केवल इतना भर जानता है कि अब यह सांस भीतर की ओर आ रहा है, अथवा बाहर की ओर जा रहा है, यह सांस लंबा है अथवा ओछा है, भारी है अथवा हल्का है, बायीं नासिका में से गुजर रहा है अथवा दाहिनी नासिका में से, नासिका के या ऊपर वाले होठ के इस हिस्से को छू रहा है अथवा उस हिस्से को। यदि ऐसा ही कर रहा है तो मन इस क्षण की सच्चाई को जानने का काम कर रहा है। भले यह स्थूल सच्चाई ही क्यों न हो और जो सच्चाई को जानने का प्रयत्न है वह मोह-विमूढ़ित नहीं। दूसरे इस सच्चाई का साक्षीकरण करते हुए इसके प्रति राग नहीं पैदा कर रहा, द्वेष नहीं पैदा कर रहा। आते हुए सांस को देखकर कौन साधक करने लगता है कि मुझे सांस चाहिए ही, और चाहिए, और चाहिए। वह तो आ ही रहा है। सांस को जाते हुए देखकर कौन साधक कहेगा कि यह सांस चला जाय, मुझे नहीं चाहिए, मुझे नहीं अच्छा लगता। सांस के आवागमन के प्रति न कोई राग है, न कोई द्वेष है। न कोई कल्पनाजन्य मोह-विमूढ़ता है। शुद्ध सांस का आलंबन इस प्रकार मन को अपने स्वभाव-विकर्ष के बाहर निकलने में मदद करता है। राग के, द्वेष के, मोह के, स्वभाव के बाहर निकलने में। भले ऐसे क्षण यदा-कदा ही आते हैं पर अभी तो काम शुरू ही किया है न ? २४ घंटे बहुत थोड़े होते हैं। ऐसे थोड़े-थोड़े क्षण भी बीच-बीच में आते रहे जब कि हम शुद्ध सांस को ही जान रहे हैं। हमारा मन न तो बिना तारतम्य की ऊट-पटांग बात में लगा है, न भूत या भविष्य की किसी रागरंजनमयी सुखद बात में और न ही किसी व्देष-दूषणमयी दुखद बात में। केवल इतना भर जानता है—सांस आ रहा है, जा रहा है, स्पर्श कर रहा है। बस काम शुरू हो गया। राग विहीनता का, व्देष विहीनता का, मोह विहीनता का नन्हा सा कदम

## धम्म वाणी

असुभानुपासिं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंयुतं ।  
भोजनमहि च मत्तञ्जुं सध्दं आरध्दवारियं ।  
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं' व पण्णतं ॥

—धम्मपद १-८

जो अशुभ को अशुभ जान कर ही साधना करता है, जो इन्द्रियों में सुसंयत है, जो भोजन की मात्रा को जानता है, जो श्रद्धावान है और जो उद्योगरत है, उसे मार (धर्म विरोधी शक्ति) उसी प्रकार नहीं डिगा सकती जैसे कि वायु शैल पर्वत को।

उठने लगा। निर्मलता का वह क्षण, भले नन्हा सा पर बड़ा प्रभावशाली होता है।

अन्तर्मन की अतल गहराइयों में यह जो हमने इतना मैल संचित कर रखा है, इस संग्रह समूह से जब इस नन्हे से क्षण की निर्मलता का संपर्क होता है तो उसे बड़ा आघात लगता है। बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया होती है इसकी। जैसे कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। भीतर का चिरसंचित मैल बाहर फूटता है। उसका प्रभाव शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट होता है। कभी किसी का सर फटता है, कभी किसी की कमर टूटती है, कभी किसी के पांव टूटते हैं, कभी किसी का जी मिचलाता है। किसी-किसी का तो शिविर छोड़कर भाग जाने को जी चाहता है। किसी-किसी को और कुछ नहीं तो ऊँघ ही आने लगती है। सारी रात गहरी नींद सोया है, लेकिन फिर भी दिन में जैसे ही सांस की ओर मन लगता है। वैसे ही ऊँघ आने लगती है। आखिर यह सब क्यों हो रहा है ? इसका कारण भी समझना चाहिए। एक उदाहरण से समझें—किसी बहन ने भोजन पकाया। अब चूल्हे में आग की जरूरत नहीं। वह उसे बुझाती है। चुल्हू भर ठंडा पानी उस चूल्हे की आग पर फेकती है। तब उस ओर से कितनी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। 'छूँ' की आवाज आती है। वह फिर चुल्हू भर पानी उस पर फेकती है। फिर 'छूँ' की आवाज आती है। इस प्रकार 'छूँ-छूँ' की प्रतिक्रिया तब तक होती रहती है जब-तक कि उस गरम चूल्हे का तापमान इस शीतल जल के तापमान के बराबर नहीं आ जाता। दोनों का तापमान एक जैसा हुआ, अब चाहे उस चूल्हे पर कोई बाल्टी भर ठंडे पानी को उड़ेल दे, कोई

प्रतिक्रिया नहीं होगी, कोई छूँ-छूँ नहीं होगा। ऐसे ही यदि उस जलते हुए चूल्हे में कुछ जलते हुए अंगारे और डालें तो चूल्हे की आग उसे सहर्ष स्वीकार करेगी। जरा भी प्रतिक्रिया नहीं करेगी। थोड़ी भी 'छूँ छूँ' नहीं करेगी। क्यों कि दोनों का स्वभाव एक जैसा है। सर्वथा विपरीत स्वभाव वाले तत्वों के पारस्परिक संघात से ही तीव्र प्रतिक्रिया होती है। मन की भी यही दशा है। धन और ऋण का संघर्ष है। पोजिटिव और निगेटिव की टक्कर है। क्षण भर की भी निर्मलता के संघात से भीतर के चिर संचित मैल अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते ही हैं।

यह सच है कि बहुत देर तक लगातार बैठे रहने से भी शरीर में पीड़ाएं जागती हैं। पर उससे बड़ा सच तो यही है कि मानसिक मैल और निर्मलता के संघात से जो गहरी प्रतिक्रिया हुई है वह शरीर पर प्रकट हो रही है। जब हम किसी खेल-तमाशे में जाते हैं, नाटक-नाचघर में जाते हैं तो घंटों बैठे रह जाते हैं। न सिर फटता है, न कमर टूटती है, न जी मचलाता है, न ऊँघ ही आती है। उस समय देर तक बैठे रहने की आदत कहां से आ गयी? बात दरअसल यह होती है कि हमारे अन्तर्मन के चूल्हे में प्रतिक्षण राग की आग धधक रही है, व्देष की आग धधक रही है, मोह की आग धधक रही है और उस खेल-तमाशे में, सिनेमा-नाचघर में अपनी आंखों और कानों के जरिए इस अन्तर्मन को जो नया आहार दे रहे हैं, जो कुछ नया प्रवेश पा रहा है वह भी राग, व्देष और मोह के जलते हुए अंगारे ही हैं। अंगारों से अंगारे जाकर मिलते हैं, क्या प्रतिक्रिया होगी? उन्हें बहुत सहर्ष स्वीकार किया जाएगा। पर यहाँ साधना करते हुए तो राग-विहीनता का, द्वेष-विहीनता का, मोह-विहीनता का शीतल जल इन जलते हुए अंगारों को स्पर्श करता है तो 'छूँ-छूँ' की तेज प्रतिक्रिया होगी ही। साधक अपने अनुभव के बल पर इस सच्चाई को समझने लगता है। और जैसे वह समझदार बहन, जिसे कि जलता हुआ चूल्हा ठंडा करना है, चुल्हू पर चुल्हू ठंडा पानी उस चूल्हे पर डालती ही जाती है, जब तक कि उसकी आग पूरी तरह शांत न हो जाय, ठीक इसी प्रकार समझदार साधक साधना का शीतल जल अपनी इस भीतरी आग पर डालता ही जाएगा। बड़े धीरज के साथ अभ्यास करता ही जायेगा। तमाम कठिनाइयों का सामना करता हुआ भी अपने काम में लगा ही रहेगा। देर सबेर समय पाकर यह आग बुझने ही वाली है। आज पहले दिन जो यह भयंकर प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, वे दिन पर दिन कम होने ही वाली हैं। कम होने ही वाली हैं। इस धीरज के साथ काम करना है। काम करते ही रहना है।

यह सच है कि काम करते हुए अनेक प्रकार की बाधाएं सामने आयेंगी। उन सभी बाधाओं का समझदारी के साथ सामना करते हुए आगे बढ़ना है। उनमें से कुछ बाधाएं ऐसी हैं, जिनके प्रति पहले से सचेत कर दिया जाना आवश्यक है। आओ, उन्हें समझें। उनसे बचें। उन्हें दूर करें। तो ही दस दिनों का पूरा पूरा लाभ हासिल कर सकेंगे।

पहली बाधा है जिसका कि जिक्र कल रात शिविर शुरू कराते समय किया था जब कि सभी साधकों को दस दिन के लिए आत्मसमर्पण करना पड़ा था। यह आत्मसमर्पण वस्तुतः इस साधना-विधि के प्रति था जो कि अपने आपमें अनूठी है। अपनी एक विशेषता लिए हुए है। दस दिनों तक अगर इसे पूरा पूरा न्याय देना है तो यह आवश्यक है कि साधक कम से कम इन दस दिनों तक और किसी अन्य विधि का

इसके साथ संमिश्रण न करे। अन्य सभी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों को, व्रतों को, कर्मकाण्डों को अलग रखे। बुरा मानकर नहीं। इस विधि की निर्मलता कायम रखने के लिए। जैसे बताया जाय, जितना बताया जाय, वैसे ही, उतना ही करे। अन्यथा केवल प्रगति में बाधा ही आकर नहीं रह जायगी। कभी-कभी बहुत बड़ी हानि भी हो जाती है। ऐसा अनेक शिविरों में हुआ है। इसलिए नए-नए साधकों को बार-बार चेतावनी देना बहुत आवश्यक हो जाता है। साधना के क्षेत्र में विधियों का सम्मिश्रण खतरे से खाली नहीं रहता। एक उदाहरण से समझें—मैं सदा अपने काले घोड़े की सवारी करने वाला व्यक्ति। मेरे पास कोई सफेद घोड़ा लेकर आये और कहे कि इसकी सवारी अधिक आरामदेह है। आजमाकर देखो। मेरा जी आजमाने को चाहे। पर मैं फैसला करूँ कि आजमाना तो है पर अपने घोड़े को नहीं छोड़ना है। एक टांग इस नए घोड़े पर रखूंगा और दूसरी टांग अपने घोड़े पर कायम रखूंगा और तब आजमाकर देखूंगा। तो खतरे की ही बात होगी न? मैं सदा अपनी नौका में विहार करने वाला। कोई व्यक्ति एक अन्य नौका लेकर आए और कहे कि यह अधिक आरामदेह है। अधिक तेज चलने वाली है। आजमाकर देखो। आजमाने को मेरा जी चाहे और फैसला करूँ कि एक टांग तो अपनी नाव में ही रखूंगा और दूसरी इस नई नाव पर रखकर इसकी आजमाइस करूंगा। तो बहुत बड़े खतरे की ही बात होगी न? इससे भी कहीं ज्यादा खतरा दो प्रकार की साधनाओं के सम्मिश्रण से हो सकता है। कभी कभी नया-नया साधक इस खतरे की गंभीरता को नहीं समझता। वह सोचता है कि दस दिन के लिए घर-बार छोड़कर आया हूँ। इस शांत वातावरण में साधना करने का अवसर मिला है। सुविधा मिली है। तो जो कुछ यहाँ सिखाया जा रहा है थोड़ा-बहुत अभ्यास इसका कर लूँ और थोड़ा-बहुत अभ्यास जो मेरे किसी पूर्व गुरु ने सिखाया उसका भी कर लूँ। थोड़ा-बहुत अभ्यास जो मैंने अपने धर्म-शास्त्रों में पढ़ा है, उसका भी कर लूँ। इस प्रकार साधना की खिचड़ी बनाकर जो अभ्यास करता है, वह अपने लिए खतरा मोल लेता है। बहुत बड़ा खतरा मोल लेता है। अनजाने, अनचाहे कोई पुराना अभ्यास अपना सिर उठा ले और इसके साथ चलने लगे तो उसमें इतना खतरा नहीं, क्यों कि ऐसा होते ही साधक मुस्करा कर उसे दूर करता है और कहता है कि नहीं, दस दिनों तक मुझे इसी विधि का अभ्यास करना है। इसे पूरा पूरा न्याय देकर देखना है। परंतु जहां दो विधियों को जानबूझ कर जोड़ने लगता है वहां खतरे को आमंत्रण देने लगता है। इसलिए इस बाधा से बचें।

दूसरी बाधा—भोजन की बाधा। अब तक तो २४ घंटे यहाँ रह चुके। यहाँ की समय-सारिणी, कार्यक्रम देख लिया। शाम को तो यहाँ भोजन मिलता नहीं। और कोई साधक सोचे कि मैं तो दोपहर के भोजन में चार रोटी और शाम के भोजन में चार रोटी खाने वाला। मेरा पेट कैसे भरे? तो क्यों नहीं दोपहर के भोजन में ही शाम के भोजन को भी सम्मिलित कर लूँ। चार की बजाय आठ रोटियाँ एक साथ खा लूँ। और बताया गया है कि तपना तो बड़े पुरुषार्थ का काम है, बड़ी मेहनत का काम है। तो अपना पराक्रम, पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए आठ ही क्यों, दस रोटियाँ क्यों न खा लूँ। कहीं ऐसा किया तो समझो कि साधना का रास्ता एकदम रोक दिया गया। एक कदम भी आगे

नहीं बढ़ सकेंगे। समुच्च साधना करनी है, गंभीरता के साथ करनी है तो एक वक्त में चार रोटियाँ खाने वाले को तीन ही खाकर हाथ खेंच लेना चाहिए। साधक के पेट का एक कोना सदा खाली ही रहना चाहिए, तो ही साधना ठीक होगी। ठूस ठूस के भरना तो बहुत बुरी बात हुई, पेट को पूरा भर लेना भी बाधक होगा।

तीसरी बड़ी बाधा है—आलस्य की, प्रमाद की। जैसे कि कल निर्देश देते हुए कहा गया कि जब बहुत शारीरिक थकान महसूस होने लगे तो शरीर को आराम देने के लिए लेट सकते हो और लेटे-लेटे भी सांस का ध्यान कर सकते हो। परंतु साथ-साथ यह भी कहा गया कि एक बार में पांच मिनट से अधिक नहीं लेटना चाहिए। कभी कभी कोई साधक सोचता है कि यह पांच मिनट का प्रतिबंध तो इसीलिए लगाया गया कि ज्यादा देर लेटेंगे तो तन्द्रा आ घरेगी। पर ऐसा तो नासमझ लोगों को होता होगा। मैं तन्द्रा का शिकार नहीं हो सकूंगा। हर आदमी अपने आपको औरों से अधिक समझदार मानता ही है। अतः सोचता है कि मैं भले ५ मिनट से अधिक लेटे-लेटे साधना करूँ। शरीर को आराम मिलेगा तो साधना अधिक अच्छी होगी। और इस प्रकार दस मिनट लेटे-लेटे सोचता है कि देखो अब तक मुझे तन्द्रा ने नहीं घेरा, यूँ १५ मिनट, २० मिनट और आधा घंटे होते-होते तो खुरांटें भरने लगता है। खुरांटें भरने ही लगता है। और अभी तक ऐसा आदर्श प्रबंध हो नहीं पाया कि प्रत्येक साधक अलग-अलग गुफानुमा कोठरी में ध्यान करे और अलग-अलग कुटिया में रहे। यहां तो पांच-पांच, दस-दस एक साथ रहते हैं। तो जैसे ही एक ने खुरांटें भरने शुरू किये कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ने लगा। दूसरे के सिर पर भी प्रमाद छाने लगा, तीसरे के सिर पर भी आलस्य छाने लगा। और सारा का सारा कमरा खुरांटों से भर गया। फिर तो यह भी हो सकता है कि सारा का सारा शिविर खुरांटों से भर जाय। यह क्या करने लगे? आए तो प्रतिक्षण सजग रहने की साधना करने और भरने लगे खुरांटें। सचमुच बहुत खतरनाक है। इससे बचना ही चाहिए। जब-जब आलस्य घेरे, सांस तेज करके इसे दूर भगाएँ। इससे भी दूर नहीं हो तो उठ कर आँखों पर ठंडे जल के छींटे दें। इससे छुटकारा नहीं हो तो भले पांच मिनट तक चलें। चलते चलते भी सांस को जानते रहें। फिर बैठकर ध्यान करें। फिर आलस्य आए तो फिर उठ कर पांच मिनट चलें और चलते चलते सांस को जानते रहें। यों इस दुश्मन को सिर पर सवार होने से रोकें।

चौथी बाधा है,—वाचालता की—बातचीत करने की। यह तो एक प्रकार से हम भारतीयों का राष्ट्रीय रोग है। हमें बतरस का बहुत लोभ है। शिविरों में विदेशी साधक भारतीय साधकों की यह शिकायत करते ही रहते हैं कि ये मौन नहीं रहते और उनका ध्यान भंग करते रहते हैं।

बातचीत करके साधक अपनी भी हानि करता है, औरों की भी। अपना भी तप भंग करता है तथा औरों के तप भंग करने का आसुरी दुष्कर्म भी करता है। अपने वाचाल मन को ध्यान के समय के लिए इतना चबेना दे देता है जिससे कि उसकी जुगाली लंबे असें तक चलती रहती है और मन मौन हो ही नहीं पाता। इसी प्रकार जिस किसी से बात की उस बेचारे को भी बहुत सा चबेना दे दिया। वह भी

देर तक उस बातचीत की जुगाली करते रहने के लिए मजबूर रह गया। अब उसका मन भी मौन नहीं हो पा रहा है। इसके अतिरिक्त जहाँ दो बातचीत में लगते हैं वहाँ औरों का ध्यान भी भंग करते हैं। अपनी भी हानि, औरों की भी हानि, सब की हानि। मन को मौन करने के लिए यह मुनियों का मार्ग है अतः वाणी को तो मौन रखना ही होगा। शरीर को भी मौन रखना होगा। यानि शरीर से भी बातें नहीं करें। आँखों से, हाथ के इशारों से, लिखत पढ़त से अथवा किसी प्रकार से भी परस्पर बातचीत न हो। वाणी का मौन और काया का मौन ही मन को मौन कर लेने में सहायक होगा। यह त्रिविध मौन ही आर्य मौन है। आर्य मौन साधक का आभूषण है जिसका आरंभ वाणी और शरीर के मौन से ही किया जाता है। हाँ साधना संबंधी कोई स्पष्टीकरण चाहिए तो अपने मार्गदर्शक से मिलें, बातचीत करके पूछें और समझें, एक बार या अनेक बार। परस्पर बातचीत बिल्कुल न करें। तो ही काम अच्छा होगा।

मौन पर इसलिए भी इतना बल देते हैं कि इस से शील पाउन में सहायता मिलती है। पांचो शील इस साधना की आधार शिलाएँ हैं। इस ध्यान केंद्र के अनुकूल वातावरण और दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम के कारण अन्य चार शील न तोड़े तो भी यदि बातचीत करेंगे तो हो सकता है असावधानीवश सत्य भाषण का शील तो टूट ही जाएगा। पुरानी आदत के कारण किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर बोल देंगे, किसी को घटा-छुपा कर और इस प्रकार सत्य का शील भंग हो जाएगा। एक भी शील भंग हो जाय तो साधना की नींव हिल जाती है इसीलिए यह चेतावनी है।

समय बड़ा कीमती है। बड़ी कठिनाई से समय निकाल कर घर गृहस्थी की जिम्मेदारी को छोड़कर, काम धंधे के उत्तरदायित्व को छोड़ कर दस दिन के लिए इस धर्म, शिविर में आये हैं। कहीं अपना कीमती समय व्यर्थ न गवा दें। जैसे आज का दिन गया वैसे ही एक-एक करके दसों दिन पूरे हो जाने वाले हैं। इन का अच्छे से अच्छा और अधिक से अधिक उपयोग करके अपना भला साधें! कल्याण साधें मंगल साधें!

भवतु सब्ब मंगलं

मंगल मित्र,  
स. ना. गो.

#### इगतपुरी में स्वयं-शिविर

|         |                              |
|---------|------------------------------|
| क्रमांक | ९) दि. २३-३-७८ से ३-४-७८ तक  |
| ॥       | १०) ,, १६-४-७८ से २७-४-७८ तक |
| ॥       | ११) ,, २७-४-७८ से ८-५-७८ तक  |

#### आगामी शिविर

|   |                                      |
|---|--------------------------------------|
| ॥ | १४७ ५-४-७८ से १६-४-७८ तक (हिन्दी)    |
| ॥ | १४८ १०-५-७८ से २१-५-७८ तक (अंग्रेजी) |
| ॥ | १४९ ३१-५-७८ से १६-६-७८ तक (हिन्दी)   |

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि,  
इगतपुरी-४२२ ४०३. (फोन नं. ७६)

#### पाठकोसे क्षमा-याचना

पिछला ९वां अंक समय पर प्रकाशित नहीं हो सका। इस निमित्त हुई असुविधाओं के लिए पाठक क्षमा करेंगे। (सं)

## विपश्यना पत्र के स्वामित्व आदि का विवरण

पत्रिका का नाम - 'विपश्यना'

भाषा - हिन्दी

प्रकाशन की अवधि - प्रतिमास पूर्णिमा (शक)

पता - २० शहीद भगतसिंह रोड, बम्बई-२३

पत्रिका के मालिक

का नाम - सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट

२० शहीद भगतसिंह रोड, बम्बई-२३

प्रकाशन का स्थान - २० शहीद भगतसिंह रोड फोर्ट, बम्बई-२३

मुद्रक, प्रकाशक,

संपादक का नाम - मधु काबरा

राष्ट्रीयता - भारतीय

मुद्रण स्थान - अक्षर चित्र मुद्रणालय, नासिक ४२२००७

मैं मधु काबरा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिया गया

विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वासानुसार सही है।

मधु काबरा

२२-२-७८

मुद्रक, प्रकाशक, संपादक

कान्ति प्रेस

ज्युपिटर पेपर मार्ट

३८७, रविवार पेठ, पूना - २. (फोन नं. ४४७०७९)

की मंगल कामनाओं सहित

मेसर्स तोषनीवाल ब्रदर्स प्रा. लि.

१९८, जमशेदजी टाटा रोड, चर्चगेट, बम्बई-२०

(फोन नं. २९६१३१)

की मंगल कामनाओं सहित।

### दूहा धरम रा

अहोभाग साधन मिल्यो, पावन आनापान ।  
पग पग चलतां राजपथ, पूर्णां पद निरवान ॥  
छण छण छण छण बीततां, औसर बीत्यो जाय ।  
सांस सांस नै निरखतां, लेवां सफळ बणाय ॥  
सांस सांस नै निरखतां, सुधैर मन बिगडैल ।  
सांस सांस नै निरखतां, उतरै मन का मैल ॥  
धण रिण रै संघात खूं, भीतर जगै भुचाल ।  
नवसाखियो समझै नहीं, हुवै हाल बेहाल ॥  
देख धरम को च्यानणों विचलित हुयो विकार ।  
ज्यू चमगादड़ तड़पियो, मिट्यो देख अंधियार ॥  
कम खाणो, कम बोलणो, काया वाणी मौन ।  
मार न बिचलित कर सकै, ज्यू परबत नै पौन ॥

### दोहे धर्म के

अवसर आया, धरम का, मत प्रमाद में खोयें ।  
अब श्रद्धा, श्रम, लगन से, सतत ध्यानरत होयें ॥  
तन मन के संयोग का, ऐसा बना बनाव ।  
एक दूसरे पर सदा, पड़ता रहे प्रभाव ॥  
तन को पीड़ित ही करें, मन के सभी विकार ॥  
मन को पीड़ित ही करें, तन के सभी विकार ।  
पीड़ित ही पीड़ित करें, अंतर भरे विकार ।  
आते भी व्याकुल किया, जाते करें प्रहार ॥  
कांटा चुभता भी दुखे, निकलत भी दुख देय ।  
त्यू ही चित्त विकार भी, दुइ विधि दुख ही देय ॥  
कर्म-बंध की ग्रन्थियां, अंतर रही समाय ।  
जब जब होय उदीरणा, बेचैनी ही लाय ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : मधु काबरा, सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.

टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलीफोन ८२५१

विज्ञापन : आधा पृष्ठ रु. ४००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २००/-, वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

### “विपश्यना”

पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट

विपश्यना विश्व विद्यापीठ

धम्मगिरि, इगतपुरी, ४२२ ४०३.

(नासिक - महाराष्ट्र)

To